ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(11): 158-160
www.allresearchjournal.com
Received: 20-08-2022
Accepted: 26-09-2022

फुल कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
फुल कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

असगर वजाहत नाटक: एक समीक्षा

फुल कुमारी

सारंश:
हिन्दी नाट्य-लेखन-पंरपरा में असगर वाजहत का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। असगर जी ने नाटक के क्षेत्र में कई अभिनव प्रयोग किये हैं। उनके नाटकों का कथ्य जितना जोरदार तथा प्रासंगिक है, भाषा और शिल्प उतना ही प्रयोगात्मक तथा आकर्षक है। असगर वजाहत ने अब तक कुल आठ नाटकों की रचना की है जो एक ही जिल्द में 'असगर वजाहत के आठ नाटक' नाम से संकलित संपादित और प्रकाशित हैं। इस संग्रह में संकलित नाटक हैं- 'फिरंगी लौट आए', 'इन्ना की आवाज', 'वीरगति', 'समिधा' जिस लाहौर नइ देख्या, ओ जम्याई नइ, गोडसे@गाँधी.कॉम और 'पाकिटमार' 'रंग मंडल'। 'फिरंगी फिर लौट आए' को स्वर्गीय विजय सोनी ने लखनऊ में कलाकारों के साथ 1976ई. में निर्देशित किया था, प्रदर्शन उसी साल दिल्ली में भी हुआ। उन दिनों देश में आपातकाल लागू था, जिसके चलते नाटक का नाम बदलना पड़ा था और वह हो गया था "जॉनबुल' बाद में दिल्ली दूरदर्शन से इसी नाटक को शीर्षक से दो भागों में टेली प्ले के रूप में प्रसारित किया। इसके एक-दो साल बाद मुझे 'इन्ना की आवाज' अनिल चौधरी के निर्देशन में आई.आई.सी. के प्रेक्षगृह में दिखायाा गया। एक तरह से 'फिरंगी फिर लौट आए' लेखक का प्रथम पूर्णाकालिक नाटक है। सन् 1857 की पृष्ठभूमि पर लिखे गए इस नाटक की देश भर में अनेक प्रस्तुतियाँ हुईं।

कूट शब्द: असगर वजाहत नाटक, 'फिरंगी लौट आए', 'इन्ना की आवाज', 'वीरगति', 'समिधा'

भूमिका:
आसगर वजाहत का दूसरा नाटक 'इन्ना की आवाज' है जो एक मध्य एशिया की लोक-कथा पर आधारित है। इसकी प्रस्तुति 'नेशनल स्कूल और ड्रामा' से निकले अनिल चौधरी ने की थी। इसमें उस समय के अच्छे अभिनेताओं जैसे पंकज कपूर, नीना गुप्ता और दीपक केजरीवाल आदि ने काम किया था। इसका मंचन बहुत प्रभावशाली था। रिहर्सल के दौरान लेखक की पूरी भागीदारी रहती थी।

'इन्ना की आवाज' की एक विशिष्टता यह है कि इसका पाठ मध्यकालीन परिवेश आधारित होने के बावजूद आधुनिक समय-संदर्भ में राजनीति के चेहरे को बेनकाब करने में प्रभावोत्पादक है। यह सांकेतिक माध्यम से दरबारी-व्यवस्था और सत्ताधीन वर्ग की पैंतरेबाजी को उजागर करता है। किस तरह कलाकार की कलात्मकता का अंत कर दिया जाता है। हुकूमत नहीं चाहती कि एक आम आदमी का नाम इतना ऊपर उठ जाए कि वह सबके लिए खुदा बन जाए और फिर जब वह खुदा के मुआफिक दर्जा हासिल कर लेता है, तो उसे दरबारी पदवी होकर उसकी रचनात्मकता पर प्रहार किया जाता है।

नाटक में इन्ना गुलाम है, नगमाकार है, जो चरवाहों को नगमा सुनाता है और उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। वह अपनी आवाज से सबको मोह लेता है। दरोगा का संवाद मुलाहजा हो खुदा ने इन्ना की आवाज में बेपनाह ताकत और कशिश दी है। वह क्या गाता है। अजीब-सा रूहानी सुकून मिलता है।

"संक्षेप में, नाटक का कथ्य यही है कि 'सुल्तान ने बीस साल पहले जिस महल को बनाने का हुक्म दिया था, वह बनकर तैयार हो गया है। अब यही काम बाकी रह गया है कि महल के बाहरी दरवाजे पर सुलतान का नाम लिख दिया जाए। अगले दिन सुल्तान महल देखने वाले हैं।"[1] सुल्तान का नाम बारंबार लिखे जाने पर भी वह मिट जाता है और इन्ना का नाम स्वयंमेव लिखा जाता है। सुल्तान इस बात से चिढ़ता है और वजीरे आजम को निर्देश देता है कि इन्ना को मरवा दिया जाय। वजीर के संवाद में इन्ना की लोकप्रियता और आवाज का उसके लिए प्यार स्पष्ट दिखाई देता है- "दूरदराज से लाखों लोग इन्ना को देखने आते हैं। उसके झोपड़े के चारों तरफ भीड़ लगी रहती है। वे लोग इन्ना की सिर्फ एक झलक पाने के लिए बेताब रहते हैं। अगर उस वक्त उनसे इन्ना उनका सिर भी मांगे तो वे दे सकते हैं। गनीमत यही है हुजूर कि इन्ना ने अभी तक उनसे कुछ मांगा नहीं है। इन्ना अब सिर्फ एक आदमी नहीं रह गया है.....खुदाबंद।"[2]

सुल्तान को यही बात परेशान करती है कि इन्ना को लोग इस तरह हद तक कैसे चाह सकते हैं? फिर शुरू होता है- इन्ना को बदनाम करने और उनकी कला का अंत करने का षड्यंत्र। कलाकार की कला ही उसका अस्तित्व और पहचान होती है। कला से ही उसका व्यक्तित्व बनता-निखरता है। कला की साधना से सिद्धि और कला सिद्धि से ही उसे प्रसिद्धि मिलती है।

नाटक में व्यंग्य की मारक शक्ति से वजाहत ने सत्तासीन वर्ग की मानसिकता को बेनकाब करने का प्रयास किया है। सुल्तान दारोगा से जब यह कहता है कि "सजा सिर्फ उन्हीं लोगों को नहीं दी जाती जो, कुसूरवार होते हैं। अगर तुम बेगुनाह, हो तब तुम्हें सजा देकर ये साबित किया जा सकता है कि सजा और इनाम का सिलसिला जारी है।"[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि सजा के लिए गुनाहगार होना और इनाम पुरस्कार पाने के लिए प्रतिभावना होना अनिवार्य नहीं है। इतिहास साक्षी है। इसी तरह अनेक लोग सजा, और इनाम पाते रहे हैं। सत्तासीन वर्ग का अपना तर्क होता है और अपने हिसाब से निर्णय करता है और उसे लगा भी करता है। एक तरह से असगर वजाहत ने राज-हित की कामना करने वाली न्याय-प्रणाली पर भी प्रहार किया है।

असगर वाहहत की तीसरा पूर्णकालिक नाटक 'वीरगति' है, जिसे विख्यात निर्देशक एम. के. रैना ने किया था। 'वीरगति' के बाद अचानक लेखक के मन में यह संवाद पैदा हुआ कि उन्होंने अब तक नाटक के लिए कथानक इतिहास या लोककथाओं से ही उठाए हैं। उन्होने सोचा कि उन्हें एक ऐसे नाटकों का सृजन करना चाहिए जो समकालीन जीवन और उनकी समस्याओं पर यथार्थवादी दृष्ट से विचार करे। इसी कारण लेखक ने 'समिधा' लिखा। यह नाटक समाज में फैले धार्मिक पाखंड पर सीधी 'चोट करता है। पता नहीं क्यों, इस नाटक को अभी तक मंचित नहीं किया जाता सका है। 'समिधा' वास्तव में लेखक के सृजनात्मक क्षमता में एक खूबसूरत मोड़ पैदा करता है।

इसके बाद असगर वाजहत का सर्वप्रसिद्ध नाटक 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याई नई' प्रकाशित होता है। 'जिस लाहौर नहीं देख्या' की सफलता का कारण लेखक के अनुसार "शायद यह है कि नाटक की विषय-वस्तु मानवता का सघन संदेश देती है। नाटक यह स्थापित करता है कि मानवीय संबंध देश, धर्म, जाति, संप्रदाय आदि से बड़े होते हैं और मनुष्य वह चाहे किसी देश या धर्म का हो, शांति से रहना चाहता है। नाटक धार्मिक सहिष्णुता पर बल देता है जो आज हमारे समय की बहुत बड़ी आवश्यकता है।"[4]

'जिस लाहौर नहीं देख्या...' मैं जीवन और जगत से संबंधित तीन प्रकार के दृष्टिकोण दिखाई पड़ते हैं। पहला दृष्टिकोण नासिर काजमी के माध्यम से समाने आता है। यह एक कवि का दृष्टिकोण है। एक कवि जीवन की कैसी व्याख्या करता है, मानव-संबंधों को किस रूप में देखता है। राजनीति और समाज के संबंधों पर क्या विचार रखता है। आदि-आदि मुद्दों नाटक में नासिर काजमी के माध्यम से सामने आते हैं। एक दूसरा दृष्टिकोण मस्जिद के मौलवी का है, जो धर्म को बहुत सच्चाई और ईमानदारी से जीवन पर लागू करता है। तीसरा दृष्टिकोण याकूब पहलवान का है, जो अपने लाभ के लिए धर्म और राजनीति दोनों से लाभ उठाता है।

पहली बार नाटककार 'अकी' में मध्यकालीन पूर्वी यूरोप की जमीन पर कदम रखा है। साथ-साथ लगे दो देशों के बीच चल रह युद्ध के कारण वहाँ के मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के लोगों को क्या-क्या भुगतना पड़ता है- इसका बहुत ही सजीव, सशक्त और जीवंत वर्णन किया गया है। युद्ध की पृष्ठभूमि मे शराब घर, वेश्याएँ, सैनिक छावनी और इसके जुड़े का वार्तालाप,

व्यवहार, वेशवूषा, गीत-संगीत बहुत विश्वसनीय बन पड़ा है। ऐसा लगता है कि हम नाटक नहीं वरन् उसी परिवेश में स्थिति एक देख रहे हैं। हमारे नाटककार बहुत कम विदेशी पर अपने नाटकों का ताना-बाना बुनते हैं, इससे अनायास ही भीष्म साहनी के हानूश भी याद आ जाती है। यदि एक ओर बार-बार खेले जाने वाले नाटकों में से एक है, लेकिन एक विडंबना ही कहा जा सकता है कि आज तक 'अकी' का कहीं कोई मंचन नहीं किया गया है।

विगत चार-पाँच वर्षों में जो नाटक अधिक चर्चा में आया, है- गोडसे @ गांधी कॉम' पढ़ते यह 'नया ज्ञानेदय' में प्रकाशित हुआ और अपने कथ्य व संरचना के कारण रंगकर्मियों के बीच इसे शीघ्र मंचित करने की होड़ मच गई। पटना में परवेज अख्तर ने प्रस्तुति तैयार कर ली थी और इलाहाबाद में अनिल भौमिक ने, लेकिन उससे पूर्व ही नाटककार द्वारा टॉम आल्टर को इसके मंचन के अधिकार दिये जा चुके थे। परिणाम यह हुआ कि उपर्युक्त दोनों प्रस्तुतियों की तैयारी रोक दी गई और आज तक इसका कोई विधिवत सावर्जनिक प्रदर्शन नहीं हो सका है। इन नाटक में गांधी और गोडसे के आपसी रिश्तों और विचारधारा को लेकर नाटककार ने एक आधुनिक फैंटैसी की रचना की है, जो गांधीवाद, विकास और सांप्रदायिकता के मुद्दे को उठाती है और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की समालोचना भी करती है। क्या अच्छा होता है अगर इधर चुनाव के दिनों में इसका मंचन किया जाता, तब यह नाटक समसामयिक घटनाओं के यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में कितना सार्थक हो उठता।

2013ई. में प्रकाशित नाटक 'पाकिटमार रंगमंडल' एक हास्य-व्यंग्य प्रधान सामयिक सरोकारों से संबद्ध नाटक है। इस नाटक का नायक भगवान एक जेबकतरा है। धोखे से एक नाटक देखकर उसकी रूचि नाटक में इतनी बढ़ जाती है कि जब कतरना छोड़कर नाटक करने लगता है। पर उसे अपनी पृष्ठभूमि के कारण बहुत-सी समस्याओं का समाना करना पड़ता है। अभी तक इस नाटक का भी मंचन नहीं हुआ है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि जब भी कोई निर्देशक इसे मंचित करेगा तो निश्चित रूप से इसकी प्रस्तुति अत्यंत सफल साबित होगी। इसके कई प्रमाण स्वयं रचना में ही मौजूद हैं। बहुत ही सहज, रोजमर्रा की भाषा का इस्तेमाल, पारसी, नौटंकी नाटकों के टुकड़ों की बीच-बीच में पिरोया जाना और फंतासी शैली होते हुए भी इतना वर्त्तमान जब एक पात्र कहीं से लौटते हुए एल.टी.जी. में अंकुर जी नाटक देखने का जिक्र करता है। मंडी हाउस, मैट्रो और श्रीराम सेंटर तो हैं ही। ऐसी युक्ति असगर प्राय: अपनी रचनाओं में प्रयोग में लाते हैं।

इस तरह कुछ आठ नाटकों के भीतर से गुजरते हुए उनका रचना-संसार पूरी तरह से जीवंत हो उठता है। कभी वह इतिहास में जाते हैं, कभी लोककथा में, कभी सामाजिक-राजनैतिक यथार्थ को अपना कथ्य बनाते हैं और कभी उस यथार्थ को फेंटैसी का-सा जामा पहना देते हैं।

नाटककार बड़ी खूबसूरती से बीच-बीच में शेरों-शायरी, गीत-संगीत पारसी नौटंकी के अंशों के साथ भी हस्तक्षेप करता रहता है। 'फिरंगी फिर लौट आए' में नट-नटी और मुन्नी बाई, 'इन्ना की आवाज' में चरवाहों का गीत और सुलतान के सामने रक्कासाओं के गीत-नृत्य, 'वीरगति' तो लगभग सारा नाटक ही गीत और शेरों-शायरी वाले अंदाज में संवाद अदाएगी का नाटक है, 'जिस लाहौर नहीं देख्या...' में तो नासिर काजमी नामधर्मा शायर ही एक जागते चरित्र के रूप में मौजूद है, जो बीच-बीच में घटनाओं और चरित्रों पर अपनी नज्मों के माध्यम से टीका-टिप्पणी करता रहता है, अकर्षण में वेश्याओं के गीत और नृत्य और अंतत: "'पाकिटमार रंगमंडल' की नाटक में नाटक की युक्ति-ये सब मिलाकर हर नाटक को आकर्षक तो बनाते ही हैं, उसे ज्यादा नाटकीय भी बनाने हैं।"[5]

कुल मिलाकर नाट्य-लेखन-परंपरा में असगर वजाहत विशिष्ट नजर-आते हैं, चूँकि इनमें भाषागत चमत्कार है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता है। इनके नाटकों का कथ्य जहाँ पाठकों को सम्मोहित कर लेते हैं, वही भाषा और शिल्प चमत्कृत कर डालता है। असगर जी के नाटक अपने मूल्यांकन के लिए पृथक नाट्यशास्त्र की मांग करता है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1. बनास जन, जनवरी- मार्च 2017, संपा.- पल्लव, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008ई०, पृ. 329
2. वही, पृ. 339
3. वही, पृ. 340
4. असगर वजाहत के आठ नाटक- असगर वजाहत, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, *2016*ई०, पृ. 8
5. वही, पृ. 9-10